फरवरी १९९१ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

वीतशोक, सचमुच वीतशोक हुआ

भगवान बुद्ध के लगभग दो शताब्दी बाद देश में अशोक नाम का सम्राट हुआ। उसके अनेक भाइयों में से एक था वीतशोक। राजपुत्रों को जिन विद्याओं और शिल्पकलाओं के कौशल में निपुण होना चाहिए, राजकुमार वीतशोक युवा अवस्था को प्राप्त होते-होते उन सब में निपुण हो गया। अपने बड़े भाई की देखरेख में राजकाज की जिम्मेदारियां सँभालने लगा। कालांतर में अशोक बदला। आदि, मध्य और अंत में सर्वतोभद्र कल्याणकारी शुद्ध धर्म के संपर्क में आया तो चण्डाशोक से धम्माशोक हो गया। तत्कालीन धर्माचार्यों के कुशल निर्देशन में भगवान की सर्वमांगल्यमयी धर्मवाणी और उनके बताए हुए साधनामार्ग का प्रतिपादन करते हुए सम्राट अशोक ने अपूर्व शांति अनुभव की। धर्मराज के हृदय में अपनी प्रजा के प्रति असीम वात्सल्य जागा। राज्य की आमदनी प्रजा की सुरक्षा के साथ-साथ उसकी सुख-सुविधा में खर्च होने लगी। सड़कों का निर्माण किया गया जिनके किनारे-किनारे फल और छायावाले वृक्ष लगाए गए। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पानी और प्याऊ का प्रबंध किया गया। स्थान-स्थान पर धर्मशालाएं बनीं। अनेक औषधालय बने। मनुष्यों के लिए ही नहीं, पशुओं के लिए भी। इन सब से बढ़कर लोगों को सांप्रदायिकता-विहीन, शुद्ध धर्म की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करने के लिए राज्य की ओर से धर्मामात्य नियुक्त किए गए। स्थान-स्थान पर प्रस्तर शिलाओं और पाषाण स्तंभों पर शुद्ध धर्म की वाणी खुदवाई गयी ताकि राज्य के शासनाधिकारी और प्रजा उसे पढ़कर सद्धर्म के प्रति उत्साहित हों। स्थान-स्थान पर साधना केन्द्रों की स्थापना की गयी ताकि लोग संयम और चित्तशुद्धि का अभ्यास कर स्वयं लाभान्वित हो सकें।

लोगों पर धर्म का प्रभाव बढ़ रहा था। इसके साथ-साथ राज्य परिवार के सदस्यों में भी धर्म-भावना बढ़ रही थी। सब नहीं तो भी अधिकांश इस धर्म-गंगा में डुबकी लगाने लगे और धर्मसुधा का रसपान कर कृतार्थ होने लगे। अपने रनिवास के लिए उसने विशेष धर्माचार्यों को नियुक्त किया।

सम्राट का अनुज वीतशोक पुण्यशाली था। धर्म ने उसे प्रभावित किया। भगवान की वाणी में उसने शांति और निर्मलता का संदेश पाया। वह गृहस्थ रहते हुए ही पूज्य भिक्षु गिरिदत्त स्थविर के चरणों में बैठकर सारा सुत्तपिटक पढ़ गया। हृदय को छू जाने वाली इस महामांगल्यमयी भगवद्वाणी ने राजकुमार वीतशोक को अभिभूत कर लिया। सरल भाषा में कही गयी भगवान की अमृतवाणी पढ़कर धर्म की गुत्थियां गुत्थियां नहीं रह गयीं। कल्पनाओं और अंध मान्यताओं के जंजाल अपने आप दूर होने लगे। सत्य का आलोक अज्ञान के अंधकार को विदीर्ण करने लगा। कार्यकारण की नैसर्गिक नियमावली स्पष्ट समझ में आने लगी। प्रतीत्य-समुत्पाद की कड़ियों पर आधारित भव-प्रवाह बहुत साफ दीखने लगा। कड़ियों के टूटने पर भवप्रवाह के निरुद्ध हो जाने की बात भी बहुत साफ समझ में आयी। चित्त और चित्त की चेतना तथा भौतिक शरीर की क्षण-क्षण परिवर्तित संतति कैसे एक दूसरे को प्रभावित करती है और कैसे इन्हें भली प्रकार समझकर भवधारा से मुक्ति पायी जा सकती है? यह बात भी स्पष्ट हुई। भव-प्रवाह दुःख ही है और इसका मूल कारण है तृष्णा, जिससे इसका समुदय होते रहता है। इस कारण के निवारण से यह प्रवाह स्वतः रुक जाता है। इस कारण के नीवारण के लिए कितनी स्पष्ट लेकिन परिश्रम-साध्य विधि है, जिसके अभ्यास से कोई भी व्यक्ति दुःखनिरोध की परम अवस्था प्राप्त कर सकता है। यों सुत्त पिटक का अध्ययन पूरा करवा कर आचार्य गिरिदत्त स्थविर ने वीतशोक को अभिधम्म पिटक की गंभीर शिक्षा का पारायण करवाया। नाम और रूप के पारस्परिक संबंधों की बारीकियां समझ में आयीं तो वीतशोक का हृदय आह्लाद-विभोर हो उठा।

इन दोनों पिटकों की परियत्तिजनक शिक्षा याने शास्त्रीय शिक्षा के साथ-साथ आचार्य गिरिदत्त भिक्षु ने अपने राज-शिष्य को प्रतिपत्ति का भी अभ्यास कराया याने साधना सिखायी। पढ़ी और सुनी हुई सच्चाई का दर्शन जब अनुभूति पर उतरने लगा तो चित्त श्रद्धा से प्रभावित होकर ऋजु होता चला गया। अपने परिवार और राजकाज की जिम्मेदारियों को निभाते हुए वीतशोक एक आदर्श गृहस्थ का जीवन जीने लगा।

समय बीतता गया। एक दिन बाल कतरने के लिए नाई आया। उसने सिर और मूछ-दाढ़ी के बाल काटे, सँवारे और तब सदा की भांति वीतशोक के हाथ में दर्पण पकड़ा दिया। उसने दर्पण में अपना चेहरा देखा। देखा अब बाल पहले जितने काले और चिकने नहीं रह गए हैं। स्थान-स्थान पर पके बाल शरीर की जर्जरता का संदेश ले आए हैं। चेहरे पर भी जीर्णता के लक्षण उभरने लगे हैं।

यह देखकर वीतशोक के मन में बड़ा धर्म संवेग जागा। अनेक पूर्व जन्मों की तरह क्या यह जीवन भी यों ही बीत जायेगा। मानव का अनमोल जीवन मिला और ऐसी मुक्तिदायिनी धर्म-साधना मिली। मुझे इसका लाभ उठाना चाहिए। मृत्यु का क्या भरोसा? कभी आ घेरे।

यों धर्मचेतना जागी तो दृढ़तापूर्वक धर्मसाधना में लग गया और शीघ्र ही स्रोतापन्न अवस्था को प्राप्त हो गया। जब काया और चित्त के परे की इन्द्रियातीत अमृत अवस्था का साक्षात्कार हुआ तो धर्म संवेग और घनीभूत हो उठा। मुझे मानव-जीवन का और इस मुक्तिदायिनी विद्या का पूरा-पूरा लाभ लेना है। अतः गृहस्थ जीवन छोड़कर राजमहल के मिथ्या प्रलोभनों को त्यागकर सिर और चेहरे के बाल कटवाकर चीवर धारण किया और प्रव्रजित हो भिक्षु गिरिदत्त के मार्ग-निर्देशन में विपश्यना-साधना में लीन हो गया। सूक्ष्म सत्य दर्शन का अभ्यास करते-करते समय पाकर वीतराग, वीतद्वेष, वीतमोह हुआ तो सही माने में वीतशोक हो गया। अर्हंत हो गया। मानव जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त हो गया और तब स्वतः उदान के ये शब्द मुखरित हुए:

केश काटने के लिए नाई मेरे पास आया। उससे दर्पण लेकर मैंने अपने शरीर का प्रत्यवेक्षण किया और तभी विपश्यना की अंतर्दृष्टि जागी:

तुच्छो कायो अदिस्सित्थ – इस जरा धर्मा, मरण धर्मा, क्षण-क्षण परिवर्तन धर्मा शरीर की निस्सारता, तुच्छता का कायानुपश्यना साधना से स्वयं प्रत्यक्ष दर्शन किया।

अंधकारेतमो व्यगा – अविद्या का सारा अंधकार विदीर्ण हो गया।

सब्बे चोळा समुच्छिन्ना – भव संस्कारों के सारे परदे उच्छिन्न हो गए। परम सत्य अनावरित हो गया।

नत्थिदानी पुनब्भवो – अब मेरे लिए पुनर्जन्म नहीं है। पुनर्जन्म के कारणभूत समस्त भव संस्कार ही उखड़ गए। भवनेत्री ही टूट गयी तो पुनर्जन्म कैसा?

सफेद बालों के दर्शन ने साधक को परम सत्य का दर्शन कर सकने की प्रेरणा दी। एक भाग्यशाली सम्राट अशोक को शुद्ध धर्म मिला तो सारा देश धन्य हो उठा। देश के अनगिनत लोगों को सच्ची सुख-शांति का मार्ग मिला।

राज्य परिवार के इक्के-दुक्के लोग अभागे रहे, धर्म-विमुख रहे। लेकिन बाकी सब मंगलमार्गी हुए। उनमें से अनेक इसी जीवन में मुक्त हुए, अर्हंत हुए। वीतशोक उनमें से एक था।

कल्याणमित्र,
स.ना.गो.